Volume-6, Issue-07, July 2019 ISSN: 2349-7637 (Online)

RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)

Research Paper

Available online at: www.rhimrj.co.in

धर्मशास्त्र रूप संन्यास में ज्ञान का दर्शन

Dr. Manubhai S. Prajapati
Arts, Science & Commerce College,
Pilvai, Gujarat (India)

भारतीय चिन्तनधारा आध्यात्मिकता प्रधान रही है | जीवन के किसी भी क्षेत्र के सम्बन्ध में विचार करते समय भारतीय मनीषियों को अग्रगण्य रखा गया है | धर्मशास्त्रों का मुख्य उदेश्य धर्म का विवेचन कराना है ,जिससे सम्पूर्ण समाज एक सही दिशा की ओर उन्मुख हो सके |

संन्यास में ज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है | शास्त्रों के अनुसार ' रुते ज्ञानेन मुक्ति ' ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं जबकि मुक्ति सन्यस्त मार्ग का मुख्य उदेश्य है | अतः मुक्ति का सीधा सम्बन्ध ज्ञान से है | तो ज्ञान का सम्बन्ध सन्यस्त मार्ग से | ज्ञान के सोपान पर आरूढ़ हो सन्यासी मोक्ष रूपी लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है |

सन्यास में ज्ञान का सर्वोपरि स्थान है क्योंकि बिना जाने कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, हर कर्म की भली प्रकार जानकारी होने पर ही उसकी पूर्णता सम्भव है, अतः ज्ञान का अर्थ जानना है | सन्यास मार्ग में ज्ञान की महत्ता को इन प्रकार दर्शाया जा सकता है |

ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण कर्मो का नाश सम्भव है | अपने कर्मानुसार जीव नाना प्रकार के कर्म करते हुये नाना प्रकार की योनियों में भटकता रहता है लेकिन ज्ञान हो जाने पर कर्म क्या है, अकर्म क्या है - इसकी जानकारी हो जाती है जो जिव बन्धन से मुक्त हो जाता है | अर्जुन की भ्रमित बुद्धि को देखकर स्वयं भगवान कृष्ण ने गीता जी का उपदेश देते हुये अर्जुन से कहा था -

किम कर्म किम कर्मेति कवयो अपि अत्र मोहिताः |
तत्ते कर्मप्रवाक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसे सुभात ||[1]

इस प्रकार कर्मो के तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर व्यक्ति संसार बन्धन से छूट जाता हेई | क्योंकि ज्ञान होते ही ज्ञान रूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मो को उसी प्रकार भस्म कर देती है जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर डालती है -

यथैधासि सम्द्धो अग्नि: भस्मात्कुरुते अर्जुन |
ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्मात्कुरुते तथा ||[2]

कर्मो के दोष ही विभिन्न यातनाओ को देने वाले होते हैं | इस बात को स्पष्ट करते हुये मनु जी लिखते है कि सन्यासी का कर्तव्य है - वह कर्मो के दोष से उत्पन्न होने वाली मनुष्यों की गतियो नरक में पड़ने तथा यमलोक की यातनाओं का विचार करें -

अवेक्षेत गतिर्नृनाम कर्मदोषसमुद्भवा |
निरये चैव पतन यातनाश्च यमक्षये ||[3]

सन्यस्त मार्ग की गरिमा इसी में है कि सन्यासी उचित व अनुचित का बोध प्राप्त करता हुआ उचित कार्यो में स्वयं को संलग्न करें | क्योंकि हर चमकने वाली चीज सोना नहीं होती -कुछ कार्य ऊपरी सतह से तो देखने पर प्रेय लगते हैं लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह श्रेयस्कर भी हो जबकि सन्यासी को केवल मात्र श्रेयस्कर कर्मो को ही करना चाहिए | उपनिषद् में कहा गया है -

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुश्यमतेस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः |
श्रेयो हि धीरो धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ||[4]

अर्थात् श्रेय और प्रेय यह दोनों की मनुष्य उन दोनों के स्वरूप पर भली भांति विचार करके उनको पृथक - पृथक समज लेता है और वह श्रेष्ठ बुद्धि मनुष्य परम कल्याण के साधन को ही भोग साधन की अपेक्षा श्रेष्ठ समजकर ग्रहण करता है | परन्तु मन्द बुद्धि वाला मनुष्य लौकिक यागेक्षेम की इच्छा से भोगों के साधन रूप प्रेय को अपनाता है |

अतः श्रेय - प्रेय का ज्ञान होने पर ही सन्यासी स्वयं को श्रेय मार्ग की तरफ ले जाता हुआ सन्यस्त मार्ग की गरिमा को बढ़ा सकता है | श्रीमद्भगवद्गीता में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखने को मिलता है | अर्जुन की बुद्धि जब मोह से भ्रमित हो जाता है, उसे उचित अनुचित का बोध नहीं होता तो वह स्वयं भगवान से प्रार्थना करता है कि -

यच्छ्रेयः स्यान्निश्च्तं ब्रूहि तन्मे |
शिष्यतेहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम ||[5]

हे भगवान में आपकी शरण हूँ ,जो मेरे लिये श्रेयस्कर मार्ग हो,वह आप बताओ मै वही करूँगा | अब भगवान जानते थे कि युद्ध करने से क्षत्रिय धर्म का पालन होगा तथा स्वधर्मपालन ही अर्जुन के लिये श्रेयस्कर है भले ही उसे मेरा यह कहना प्रिय न लगे क्योंकि श्रेय मार्ग आवश्यक नहीं कि प्रिय भी हो | नारद द्वारा भगवान से मोहिनी रूप मांगने पर भगवान ने वानर का रूप दिया क्योंकि नारद ने स्वयं कहा था कि जेहि विधि होय नाथ हित मोरा |करहु सो बेगि दास मैं तोरा |[6]

अब भगवान जानते थे कि नारद का हित वानर रूप देने मैं हे या मोहिनी रूप | भगवान ने सोचा - एक बार ही वानर का रूप दे दूं तो छुट जाएगा -नहीं तो सारा जीवन पत्नि के समक्ष मरकटवत रहना पड़ेगा - ऐसा सोचकर भगवान ने नारद को प्रिय नहीं लगने वाला श्रेयस्कर मार्ग को अपनाया | अतः ज्ञान के द्वारा ही श्रेय व प्रेय मार्ग का बोध शक्य है |

ज्ञान द्वारा बोध हो जाना सन्यास की उत्कृष्टता है लेकिन वास्तविकता तो यह है कि बोध हो जाने पर ज्ञान का भी बढ़ होता है क्योंकि जिसके द्वारा जाना जाता है, उस आधार को भी पुनः छोड़ दिया जाता है क्योंकि आधार का बलिदान पहले होता है | प्रायः हम अपने दैनिक जीवन में प्रतिदिन ऐसी धटनाये देखते रहते हैं कि हमने आग लेकर कागज से मोमबत्ती को जलाया हमारा उदेश्य मोमबत्ती को जलाना था लेकिन कागज मोमबत्ती को जलाता है - मोमबत्ती बाद में जलती है, कागज पहले ही जल जाता है | अतः आधार भी समाप्त होता है | इसी भाव को जगद्गुरु शंकराचार्य ने विवेक चूड़ामणि में दर्शाया है -

अविज्ञाते परे तत्त्वे ,शास्त्रधितिस्तु निष्फला |
विग्यनातेपि परे तत्त्वे , शास्त्रधितिस्तु निष्फला ||[7]

अर्थात् परमतत्व को यदि न जाना तो शास्त्राध्ययन निष्फल ही है, और यदि परमतत्व को जान लिया तो भी शास्त्राध्ययन निष्फल ही है |जिसे प्राप्त करना था, उसे प्राप्त कर लेने के उपरान्त जिससे प्राप्त किया जाता है - वह भी त्याज्य है | जिस शास्त्राध्ययन के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है - ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त वह शास्त्र भी त्याग देने पडते हैं क्योंकि स्वाध्याय क भी एक उदेश्य होता है जैसे कपडे की मैल दूर करना उदेश्य है तो कपडे की मैल दूर करने के लिये जिस साबुन को लगाया जाता है, उस साबुन को हटाते है, उस पानि को भी धूप में कपडा डालकर सुखाया जाता है | अतः यह बात सर्वथा उचित प्रतीत होती है कि बोध का भी बाध किया जाता है |

मनुष्य जीवन का वास्तविक उदेश्य मोक्ष प्राप्त करना है तथा दुर्लभ मनुष्य शरीर को प्राप्त करके मोक्ष की प्राप्ति कर लेने में ही मानव शरीर की उत्कृष्टता है | लेकिन मोक्ष ज्ञान द्वारा संभव है क्योंकि अध्यात्मज्ञान से रहित सन्यासी कोई भी क्रियाफल को प्राप्त नहीं करता है | मनुस्मृति में आता है - न हनध्यत्मवित् कश्चित् क्रियाफलम् उपाश्नुते |[8]

अन्तः करण के मलरहित हो जाने पर ही ब्रहमभाव को प्राप्त किया जा सकता है और अन्तः करण की पवित्रता ज्ञान द्वारा ही की जा सकती है | श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है - न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रामिह विद्यते | अर्थात् इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला नि:संदेह कुछ भी नहीं है | ज्ञान समस्त पापों से तरने का सहज उपाय है | भगवान ने स्वयं अर्जुन को समजाते हुये कहा है कि यदि तू सब पापियो से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी ज्ञान रूपी नौका द्वारा निःसन्देह संपूर्ण पापों को अच्छी प्रकार तर जायेगा |

अपि चेदसि पापेभ्य सर्वेभ्यः पापकृत्तमः |
सर्वं ज्ञानप्लेवनैव वृजिनं संतरिष्यसि ||[9]

संपूर्ण कर्मों के नाश हो जाने पर जब अन्तःकरण पूर्ण,शुद्ध हो जाता है तब मनुष्य सहज भाव से ज्ञान प्राप्त कर पाता है | शास्त्रों का ऐसा मानना है कि अज्ञान रूपी सर्प से दंसे हुये मनुष्य के लिये ब्रहमज्ञान औषधि के समान है - शेष समस्त साधन अज्ञान को दूर करणे में असमर्थ है | जगद्गुरु शंकराचार्य ने ब्रहमज्ञान को अति महत्व प्रदान करते हुये लिखा है कि -

अज्ञान सर्पदष्टस्य ब्रहमज्ञानौषधं विना |
किमु वेदैश्च किमु मन्त्रैः किमौषधैः ||[10]

अतः इस प्रकार मानव जीवन का मूल उदेश्य मुक्ति प्राप्त करना है | क्योंकि चौरासी लाख योनियों में भटकने के उपरान्त जब् मानव शरीर की प्राप्ति होती है तब ज्ञान प्राप्त होने पर बार -बार मन में अभिलाषा होती है कि जन्ममरण के बन्धन से मुक्ति के क्या उपाय हो सकता हैं | यह जिज्ञासा ज्ञानोपलब्धि कराती है | फलतः ज्ञानोपलब्धि मुक्ति के द्वार खोलती है | अतः सिध्द हुआ कि मुक्ति ज्ञान द्वारा संभाव्य है |

शास्त्रों का मत है कि मानव जीवन के रहेते -रहेते बोध हो जाना चाहिये क्योंकि ज्ञान हो जाने पर सृष्टि वही रहती है केवल मात्र दृष्टि बदल जाति है | जैसे नदियां समुद्र में विलीन हो जाती है | तो उनका अलग से अस्तित्व नहीं रहता उसी प्रकार बोध हो जाने पर जीव ब्रहम में ही एकाकार भाव को प्राप्त कर लेता है तब अपना अपना अलग से कोई अस्तित्व शेष नहीं रहता | ज्ञानी पुरुष के लिये तो मानो संसार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है | तब ज्ञानी पुरुष बोलता है - वह संसार कहां चला गया ?

उसे कौन ले गाय ?

यह कहां लीन हो गया ?

अहो बडा आश्चर्य है, जिस संसार को मै अभी देख रहा था, वह कही दिखायी नहीं देता |

क्व गतं केन वा नीतं कुत्र लिनमिद जगत् |
अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महद्दभुतम् ||[11]

अतः मानव जीवन का महान उदेश्य ज्ञान प्राप्त करना ही है क्योंकि यही परम पुरुषार्थ को प्राप्त कराने वाला है | धर्मसूत्र में इसी महत्ता को स्वीकार करते हुये कहा गया है कि आत्मज्ञान की प्राप्ति से बढकर और कोई भी लाभ संसार में नहीं है -

आत्मलाभान्न परं विद्यते |[12]

संदर्भ सूची

१. श्रीमद्भगवद्गीता १७ /८ .९ .१०
२. योगवसिष्ट ६ /६९ /४१
३. अमृतनादोपनिषद ७ -३८

४. मनुस्मृति ६ /६६
५. श्रीमद्भगवद्गीता १६ /१ ,२ ,३
६. श्रीमद्भगवद्गीता ४ /१६
७. श्रीमद्भगवद्गीता ४ /३७
८. मनुस्मृति ६ /६१
९. कठोपनिषद १ /२ /२
१०. श्रीमद्भगवद्गीता २ /७
११. श्री रामचरितमानस-बालकाण्ड १३१ /४
१२. विवेकचूडामणि -६१